The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 02-06-16

Economic recovery could be fuelled by consumption, but sustaining momentum will require private investment

The CSO's provisional estimate of national income released on Tuesday states the economy grew at 7.6 per cent in 2015-16 compared with an estimated 7.2 per cent in the previous year.The Central Statistics Office's provisional estimate of national income released on Tuesday states the economy grew at 7.6 per cent in 2015-16 compared with an estimated 7.2 per cent in the previous year. The Indian economy's remarkable fourth quarter performance clearly indicates it has been aided in no small measure by a consumption-led demand boost in 2015-16. Sequentially, the 7.9 per cent jump in the GDP growth rate in Q4 (January-March 2016) is the highest among the four quarters in the last financial year. A robust private consumption growth of 7.4 per cent during the year helped the economy cross the $2 trillion-mark. The CSO data surprisingly shows a sharp increase in "discrepancies" (at Rs 1.43 trillion) at constant prices in the quarter ending March 2016. "Discrepancies" is the difference in GDP numbers measured by the production and expenditure approaches. But this is not out of the ordinary and has been high during the last decade. As a series of reports on the state of the economy in this newspaper last week said, the consumption story will play out fully during the current financial year and the next year too on the back of the Pay Commission awards, a good monsoon that will improve rural incomes, easing liquidity and lower interest rates. India, given its demographic profile, will remain a consumption story for a long time given that consumption demand accounts for 54 per cent of the GDP. Green shoots of recovery — higher light commercial vehicle and three-wheeler sales, as also firming up of freight rates — visible since the beginning of calendar year 2016 have brought excitement back to the outlook. What is critical though is for these green shoots to strike roots so that the growth momentum is sustained. This is where private investment has to take the baton from the government — both at the Centre and in the states. Gross fixed capital formation — an indicator of investment by the private sector — slowed down to 3.9 per cent in 2015-16 compared with 4.9 per cent in the previous year. Private investment continues to remain moribund and companies are nowhere close to 80-85 per cent capacity utilisation, levels at which they start thinking of expanding and making fresh investments. Coupled with the pain of excess capacity is the debt burden that corporates are carrying on their balance sheets and risk aversion among banks to lend, even if they can. It is during these times the Centre can boost sentiment further by pushing through legislation such as the Goods and Services Tax that alone will add 1.5-2 per cent to the GDP. The states, which are the principal point of contact for investors, can overhaul their governance structures to significantly improve parameters that add to the "ease of doing business".

THE TIMES OF INDIA

Date: 03-06-16

Clear the air: Pollution Control Board report indicates improving India's urban air quality is doable

A report of Central Pollution Control Board suggests all is not lost in India's battle to improve air quality. Levels of PM10, or coarse pollution particles, have dipped over time in some cities, possibly on account of a transition to superior vehicle emission standards. There are lessons here for decision makers who have often resorted to knee-jerk or piecemeal measures to combat air pollution. A systematic and comprehensive approach which avoids recourse to bans is the one most likely to work.For two decades India has seen a calibrated tightening of vehicular emission norms. However, the full potential of this trend has not been realised because all arms of government have not worked in tandem. To illustrate, six years ago retail price of petrol was linked to the market while diesel continued to be heavily subsidised. This distortion in fuel policy led towards dieselisation which undermined air quality. So the logical course to go now, if we want to clean up urban air, is parity between taxation of petrol and diesel. Alongside there needs to be a quick transition to much tighter and uniform BS-VI fuel and emission norms. Banning sales of new diesel cars is wrong-headed, as it leads to heavier use of older diesel cars whose emissions are more polluting.

A drawback in the fight against air pollution is absence of reliable data on the sources of pollution. Consequently, policy has encompassed picking soft targets such as Delhi's odd-even plan for cars. Given the toll poor air quality has on human health, it is important to gather reliable data. In this backdrop, the pollution control board's report represents a step forward in an attempt to gather relevant information. It needs to be followed by measures which provide people incentives to choose environmentally friendly options.

राष्ट्रीय सहारा

Date: 02-06-16

लापरवाही की पराकाष्ठा

महाराष्ट्र के पुलगांव स्थित सेना के आयुध डिपो में जो आग लगने की घटना हुई वह प्रथम दृष्टि में लापरवाही और सुरक्षा के मानकों कि उपेक्षा का मिलाजुला परिणाम प्रतीत हो रहा है। ऐसा इसलिए भी कि इस आयुध डिपो में इस तरह यह पहली नहीं तीसरी बड़ी घटना है। 1989 और 1995 में भी इस तरह घटनाएं हुई हैं। 1989 की तो आग भीषण थी। इस दुर्घटना में करीब 140 करोड़ रूपये के हथियारों का जखीरा जल कर खाक हो गया था । इसमें कोई मानवीय क्षति नहीं हुई थी। लेकिन सोमवार देर रात की घटना 1989 की घटना से इस मायने में थोड़ भिन्न प्रकृति की है कि इस भीषण आग से न केवल संपत्ति का नुकसान हुआ बल्कि आग पर काबू पाने की कोशिश में दो अधिकारियों, एक जवान और तेरह दमकलकर्मियों की मौत हो गई। सेना के आयुध भंडारों में आग लगने की घटनाएं अक्सर होती रहती हैं। सन 2000 से दिसंबर 2015 तक आयुध भंडारों में छोटी-बड़ी आठ घटनाएं हो चुकी हैं। आग की इन घटनाओं में करीब 3,000 हजार करोड़ रु पये से ज्यादा के हथियार नष्ट हो गए। पुलगांव स्थित करीब 7 हज़ार एकड़ में फैला सेना के इस आयुध भंडार के बारे में आग से बचाव की पूर्व चेतावनी भी नियंत्रक एवं महलेखा परीक्षक (कैग) ने जारी की थी। कैग ने 2012 में आयुध कारखानों से संबंधित अपनी रिपोर्ट में पुलगांव के आयुध भंडार की ओर संकेत करते हुए कहा था कि यहां पर्याप्त दमकलकर्मी नहीं हैं। और एशिया के सबसे बड़े और महत्वपूर्ण आयुध भंडार को आग लगने के जोखिम से बचाने के पर्याप्त उपाय नहीं किए गए हैं। कैग ने तो यहां तक कहा कि इसी कमांड में स्थित दूसरे आयुध भंडारों में दमकलकर्मियों की संख्या जरूररत से ज्यादा है, जिन पर करीब 5 हजार करोड़ रुपये खर्च होते हैं। ताज्जुब की बात है कि कैग रिपोर्ट के बाद भी इस ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी गई। बहरहाल, यह जांच का विषय हो सकता है। महत्तवपूर्ण बात यह है कि लगातार अलग-अलग मौकों पर पूर्व सेनाध्यक्ष सरकार और देश के सामने रक्षा सामग्रियों के अभाव की बात कहते रहे हैं। इसके बावजूद जिस तरह की ढील वर्धा आयुध मामले में देखी गई, उससे तो यही प्रतीत होता है कि इस तरह की गंभीर बातों की अनदेखी देश को भारी पड़ सकती है। एक और तय जो लापरवाही को उजागर करता है,

वो है आग बुझाने के पर्याप्त इंतजाम का न होना। हमें हथियारों को सुरक्षित ढंग से सहेजना का सलीका भी सीखना होगा।

Date: 02-06-16

बालमन को सहेजता कानून

कमलेश जैन

जुवेनाइल जस्टिस, केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रन एक्ट, 2015 आ गया है। देखना दिलचस्प होगा कि यह कानून किन अर्थो में अलग या नई त्रुटियों के साथआया है। वे किशोर जो कोईअपराध कर बैठते हैं, उनकी देखभाल, सुरक्षा, विकास, उपचार, समाज में पुनर्वास, मेल-मिलाप दोस्ती के माहौल में हो जिनका बच्चों के अधिकार और जरूरत, दोनों हैं। इस कानून के अंतर्गत वे बच्चे आते हैं, जो बायोलॉजिकल या गोद लेने वाले माता-पिता द्वारा छोड़ दिए गए हैं, या बच्चा माता-पिता से बिछुड़ गया है। वे बच्चे भी इसके दायरे में आते हैं, जिन्हें किसी आम जगह पर भीख मांगने के लिए बिठा दिया गया है-जख्मी बनाकर, बीमार, अपंग बनाकर। जिस बच्चे का कोईघर, खाने-पीने का साधन नहीं है, जो लेबर लॉ का उल्लंघन कर कहीं काम करने के लिए मजबूर है-जो बच्चा किसी ऐसे व्यक्ति के साथरहता है, जो उसे चोट पहुंचाता है, शोषण करता है, या किसी तरह से प्रताड़ित करता है, उसकी देखभाल नहीं करता; जान से मारने, घायल करने, शोषण करने, प्रताड़ना देने की धमकी देता है, और किसी भी समय ऐसा कर सकता है। इसमें वे बच्चे भी आते हैं, जिनके साथ रहने वाले बच्चों को मार दिया गया है, शोषण, प्रताड़ित किया है, आदि। इस कानून के तहत वे बच्चे भी आते हैं, जो ऐसे माता-पिता, अभिभावक के साथरहने को मजबूर हैं, जो खुद ही लाचार, अपंग, इनकी देखभाल में अक्षम हैं। इसके अलावा, घरों से भागे हुए, खोये हुए बच्चे, जिनके माता-पिता ढूंढे नहीं जा सके या ऐसी जगह हैं, जहां उनका यौन शोषण, मारपीट, प्रताड़ना होती हो, गैर-कानूनी काम कराया जाता हो, या उन्हें नशे की लत लग जाए या नशे की गिरफ्त में आ जाने की शंका हो। इस कानून के तहत वे बच्चे भी आते हैं, जो किसी प्राकृतिक आपदा का शिकार होकर अकेले रह गए हों या जिनका बाल-विवाह होने का खतरा हो। अत: जिन प्रकार से एक बच्चा अपना बचपन खोने पर ढंग से न जीने के लिए मजबूर हो सकता है, वे सभी आयाम इस कानून द्वारा छुए गएहैं। एक बच्चे से मित्रतापूर्ण वातावरण, आचरण और व्यवहार प्रक्रिया अपनाई गई है, जहां बच्चे खुशहाल बच्चों की तरह विकास कर सकें। ऐसे परित्यक्त, भूले-भटके बच्चों को अदालत से गोद भी लिया जा सकता है। इन बच्चों के कल्याण के लिए बाल कल्याण अधिकारी, पुलिस अधिकारी होते हैं। उनके लिए चिल्ड्रन होम, चिल्ड्रन कोर्ट, चाइल्ड केयर संस्थाएं होती हैं। अठाहर वर्ष से कम उम्र का बालक

''किशोर'समझा जाता है। इस कानून के अनुसार, जब ऐसे बच्चे किसी अपराध में लिप्त पाए जाते हैं, तो उन्हें जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड में स्पेशल जुवेनाइल पुलिस यूनिट द्वारा पेश किया जाता है। पेश किए जाने की अवधि 24 घंटे है। इन्हें जमानत दी जाती है। छोटे-मोटे अपराध, जिनमें अधिकतम सजा तीन वर्ष है-का निबटारा ''बोर्ड' ही करता है। पर जब वह अपराधहोता है, जिसके लिए कम से कम सात साल की सजा होती है, तो वह गंभीर अपराध कहलाता है। लेकिन गंभीर अपराधों में किशोर की उम्र 16 वर्ष से कम है, तो बोर्ड ही निबटारा करेगा। पर यदि उसकी उम्र 16 वर्ष से ज्यादा है, तो बोर्ड प्रारंभिक जांच कर यह निर्णय लेगा कि किशोर की शारीरिक, मानसिक शक्ति कितनी है-जिससे उसने यह गंभीर अपराध किया है-क्या वह अपराध करते वक्त समझ सकता था कि उसके अपराध का परिणाम क्या होगा। अपने स्वनिर्णय के अनुसार बोर्ड यह तय करेगा कि सोलह वर्ष से ऊपर का गंभीर अपराध करने वाला किशोर उसके बोर्ड द्वारा जांचा जाएगा या आम अदालत में उसकी ट्रायल एक बालिग अपराधी की तरह होगी। जुवेनाइल जस्टिस कमेटी ऐसे बच्चों का मामला देखती है, जिन्हें इस संस्था द्वारा देखभाल, सुरक्षा, भरण-पोषण, शिक्षा, विकास की जरूरत होती है। कमेटी देखती है कि बच्चे को देखभाल की जरूरत है, या नहीं। और तब बच्चे की उसके परिवार, अभिभावक, चिल्ड्रन होम या किसी फोस्टर परिवार, संस्था में सौंपे जाने का निर्णय लेकर वहां दे देती है। उन्हें उचित व्यक्ति को गोद भी दिया जाता है। बच्चों का पुनर्वास करवाया जाता है। कुल मिलाकर यह अत्यंत ही आदर्शमय कानून है। लेकिन सरकार कितना और कहां तक अपने उद्देश्यों में सफल होती है, बच्चों का विकास कैसा होता है, और छोटे अपराध से लेकर बड़े-बड़े अपराध कर बैठने वाले किशोर कितना इस विकार को छोड़ पाते हैं-यह देखने वाली स्थिति होगी-और उस दिन सुखद होगी जब हमारा भविष्य स्वस्थ और सुंदर होगा।

Date: 02-06-16

जीडीपी से आगे के सवाल

सालाना आंकड़े भारत में मंदी की ओर इशारा नहीं करते हैं। 2015-16 में कुल मिलाकर 7.6 प्रतिशत की दर से विकास होने का अंदाज है। आर्थिक सर्वेक्षण के मुताबिक 2014-15 में विकास दर 7.2 प्रतिशत थी।इसके पहले के साल यानी 2013-14 में विकास दर 6.6 प्रतिशत थी

आलोक पुराणिक

आर्थिक आंकड़े कई बार एक आधुनिक कविता या आधुनिक पेंटिंग सरीखे हो जाते हैं, जिसका जो मन चाहे, व्याख्या कर ले। हरेक के पास अपनी व्याख्या है और दूसरे की व्याख्या को वह गलत मान रहा है। हाल में सकल घरेलू उत्पाद यानी ग्रास डोमेस्टिक प्रॉडक्ट यानी जीडीपी के जो आंकड़े आए हैं, उनमें जनवरी-मार्च, 2016 की अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था 7.9 प्रतिशत की दर से विकास करती हुई दिख रही है। 7.9 प्रतिशत यानी करीब आठ प्रतिशत। अब नीति आयोग के मुखिया अरविंद पनगारिया इसे जादुई नंबर मानकर खुश हो सकते हैं। ऐसी ग्लोबल मंदी में आठ प्रतिशत की विकास दर कमाल है। आर्थिक मंदी नहीं, सामान्य परिस्थितियों में भी भारत जैसी विशाल अर्थव्यवस्था की विकास दर आठ प्रतिशत कमाल ही है। पर यह कमाल कुछ फीका लगने लगता है, जब रिजर्व बैंक जैसे जिम्मेदार संगठन के बहुत ही जिम्मेदार मुखिया रघुराम राजन कहते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था तो ''अंधों में काना राजा' की हैसियत की है यानी पूरे विश्व की तमाम अर्थव्यवस्थाओं में मंदी है। ऐसे में भारतीय अर्थव्यवस्था थोड़ी बहुत चलती दिखाई दे रही है, इसका मतलब यह नहीं कि हम विकास की बहुत तेज रफ्तार से दौड़ रहे हैं। इसका मतलब सिर्फ यह है कि औरों की खराब हालत के मुकाबले हमारी कम खराब हालत भी बहुत अच्छी दिखायी पड़ रही है। कुल मिलाकर हाल में आए जीडीपी के आंकड़े कुछ महत्त्वपूर्ण तयों को रेखांकित करते हैं। एक तय तो यह है कि कुल मिलाकर सालाना आंकड़े भारत में मंदी की ओर इशारा नहीं करते हैं, जैसे इशारे कई कंपनियों की सेल के आंकड़ों से मिलते हैं। 2015-16 में कुल मिलाकर 7.6 प्रतिशत की दर से विकास होने का अंदाज है। आर्थिक सर्वेक्षण के मुताबिक 2014-15 में विकास दर 7.2 प्रतिशत थी। इसके पहले के साल यानी 2013-14 में विकास दर 6.6 प्रतिशत थी। उसके भी पहले के साल यानी 2012-13 में विकास दर 5.4 प्रतिशत थी। यानी हर साल विकास दर बढ़ रही है। और खासकर 2014-15 और 2015-16 में सूखे के बावजूद सात परसेंट से ऊपर की विकास दर यह बताती है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की अब भी अपार संभावनाएं हैं। अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र कृषि क्षेत्र में विकास लगभग ना के बराबर है, फिर विकास दर सात परसेंट के ऊपर जा रही है। अगर कृषि क्षेत्र विकास दर में चार या पांच प्रतिशत की दर से योगदान करे, तो विकास काफी ऊपर जा सकता है। कुल मिलाकर मसला सिर्फ समग्र अर्थव्यवस्था के विकास का नहीं है, मसला है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र किस तरह से विकसित हो रहे हैं। 7.9 प्रतिशत के जीडीपी विकास के आंकड़ों के साथ ये भी आंकड़े बताए सरकार ने कि आंकड़े कि 2015-16 में समूची अर्थव्यस्था 7.6 प्रतिशत की दर से विकसित होती दिख रही है। पर कृषि क्षेत्र का विकास 1.2 प्रतिशत की दर से ही हो पाएगा। वहीं मैन्युफेक्चरिंग यानी तमाम आइटमों के निर्माण के क्षेत्र में बढ़ोत्तरी 9.3 प्रतिशत की रहनेवाली है। वित्तीय सेवाओं के क्षेत्र में विकास 10 प्रतिशत को पार करता दिखता है-10.3 प्रतिशत। होटल, ट्रांसपोर्ट सेवाओं में विकास दर 9 प्रतिशत रहनेवाली है। इन आंकड़ों को गौर से देखें, तो अर्थव्यवस्था के पेच साफ दिखाई देने लगते हैं। वित्तीय सेवाओं के क्षेत्र में 10 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी के मायने हैं कि वित्तीय क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ने चाहिए। पर नोट करने की बात यह है कि इस

क्षेत्र में काम करने के लिए सिर्फ पढ़ा-लिखा होना ही नहीं, कुछ विशेषज्ञ ज्ञान रखना भी जरूरी होता है। यानी कुल मिलाकर इस क्षेत्र में भारत के बहुसंख्य कामगार वर्ग को रोजगार नहीं मिल सकता। फिर मैन्युफेक्चरिंग क्षेत्र के विकास का आंकड़ा भी खासी खुशनुमा तस्वीर पेश करता है-9 प्रतिशत। फिर मैन्युफेक्चरिंग क्षेत्र में तमाम कंपनियों, तमाम निर्माण इकाइयों में रोजगार की तस्वीर खुशनुमा नजर क्यों नहीं आती। फरवरी, 2016 में बजट से पहले पेश किए गए आर्थिक सर्वेक्षण में बताया गया है कि 1989 से 2010 के बीच निर्माण क्षेत्र में एक करोड़ पांच लाख नौकरियां नई आई, पर इनमें सिर्फ 35 प्रतिशत ही औपचारिक क्षेत्र में आई, यानी ठीक-ठाक नौकरियां का जुगाड़ सिर्फ 35 परसेंट के केस में हुआ, बाकी के मामले में कांट्रैक्ट और आऊटसोर्सिंग से काम चलाया गया।अब रोजगार लेनेवालों के पास ज्यादा विकल्प हैं, देनेवालों के पास विकल्प कम होते जा रहे हैं। यह खासी चिंता का विषय है। एक चिंता और जीडीपी के आंकड़े पेश करते हैं कि ऐसी हिंदुस्तानी अर्थव्यवस्था बन गई है, जिसका एक हिस्सा वित्तीय क्षेत्र तो 10.3 प्रतिशत की दर से विकास करता हुए दिखता है और उसी अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र 1.2 प्रतिशत की दर से विकास कर रहा है। एक ही अर्थव्यवस्था के दो क्षेत्र और विकास में दस गुने का अंतर। ठीक यही वजह है कि जब हम यह खबर सुन रहे होते हैं कि किसी बैंक के शेयर के भाव एक साल में बीस परसेंट उछल गए, ठीक उसी वक्त यह खबर भी आती है कि विदर्भ में कुछ किसानों ने आत्महत्या कर ली। दोनों खबरें एक ही अर्थव्यवस्था से आ रही हैं। चिंता की असली बात यह है। जीडीपी के आंकड़ों में सबसे चिंताजनक आंकड़ा यह है कि क्यों खेती का विकास इतना पिछड़ गया। वरना, दस परसेंट से विकास करता वित्तीय क्षेत्र और एक परसेंट विकास करता खेती का क्षेत्र-एक तरफ से फील गुड शाइनिंग इंडिया दिखेगा पर दूसरी तरफ से डूबता इंडिया दिखेगा। तो तमाम चुनाव का विश्लेषण यही निकलता है कि पब्लिक किसी को जिताने के लिए नहीं, गुस्से में सरकार को भगाने के लिए वोट देती है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 03-06-16

कारोबारियों को अब रास नहीं आ रहा भुगतान बैंक

देवाशिष बसु

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) में बैठे बुद्धिमानों के लिए आश्चर्य की वजह बनते हुए और उत्साह प्रदर्शित कर रहे टीकाकारों को गलत साबित करते हुए देश में भुगतान बैंक स्थापित करने के इच्छुक आवेदक एक के बाद एक अपने आवेदन वापस ले रहे हैं। दक्षिण भारत के मुरुगप्पा समूह द्वारा संचालित चोलामंडलम फाइनैंस नाम वापस लेने वालों में पहला था। उसके बाद नंबर आया दिलीप सांघवी और उनके साले सुधीर वालिया का जबकि वे सुजलॉन विंड फार्म और फॉच्र्यून फाइनैंशियल के रूप में वित्तीय क्षेत्र में निवेश के बाद अपने धन का एक हिस्सा बैंकिंग में लगाने को तैयार नजर आ रहे थे। लेकिन अब उन्होंने भी भुगतान बैंक का विचार त्यागने का निर्णय लिया है। मानो इतना ही काफी नहीं था तो सॉफ्टवेयर कंपनी टेक महिंद्रा ने भी इससे दूरी बनाने का निर्णय लिया है।

इस स्तंभ के पाठक कतई चकित नहीं होंगे। नवंबर 2014 में जब आरबीआई ने कहा था कि वह एक नए तरह के बैंक यानी भुगतान बैंक के लिए लाइसेंस जारी करेगा तब मैं शायद इकलौता व्यक्ति था जिसने इस नए विचार को लेकर शंका जाहिर की थी। एक स्तंभकार ने तो कह दिया था कि यह वित्तीय समावेशन की दिशा में एक बड़ा कदम है। एक अन्य का कहना था कि दूरसंचार कंपनियों से लेकर फ्लिपकार्ट, स्नैपडील और रिलायंस अथवा इंडिया पोस्ट, रेलवे और तेल कंपनियों तक सैकड़ों भुगतान बैंक सामने आएंगे।

भुगतान बैंक के विचार से कारोबारी भी उत्साहित थे। हालांकि वे हर उस मौके पर उत्साहित रहते हैं जब उनको लगता है कि बैंकिंग नियामक कोई मौका पेश करने जा रहा है। मुझे इस बात में रत्ती भर भी संदेह नहीं था कि भुगतान बैंक के लिए कई आवेदक सामने आएंगे क्योंकि यह उन चुनिंदा कारोबारों में से है जहां मांग बहुत ज्यादा है और आपूर्ति बहुत कम। इसके बावजूद आरबीआई को केवल 41 आवेदन हासिल हुए। यह आंकड़ा कहीं से भी 100 बैंकों का नहीं था जिनका अनुमान टीकाकार लगा रहे थे। लेकिन मैं इस बात को लेकर स्पष्ट था कि भुगतान बैंक का विचार आने के साथ ही विफल हो जाएगा। मैंने पहले भी अपने स्तंभ में लिखा था कि भुगतान बैंक का विचार, एक अलहदा कारोबार के रूप में पूरी तरह अव्यवहार्य है। मैंने लिखा था कि भुगतान बैंक कतई बैंक नहीं हैं। पहली बात, वे जमा और निवेश के विस्तार के बीच कोई आय अर्जित नहीं कर पाएंगे। निश्चित तौर पर जमा आकर्षित करने के लिए उनको निरंतर अच्छी खासी रकम ब्याज के रूप में चुकानी होगी। दूसरा, उनको ऋण देने की इजाजत नहीं होगी। इस तरह वे एक बैंक के राजस्व के मुख्य स्रोत से वंचित रहेंगे। यह कुछ इसी तरह है कि आप अखबार तो शुरू कर दें लेकिन विज्ञापन नहीं छापेंगे।

अब जबकि 11 में से तीन दावेदारों ने अपनी दावेदारी वापस ले ली है तो आरबीआई के अधिकारियों के चेहरे लाल नजर आ रहे हैं। डिप्टी गवर्नर एसएस मूंदड़ा जो अन्य आरबीआई अधिकारियों की तरह सैद्धांतिक विशेषज्ञ होने के बजाय बैंकर रहे हैं, वे खासे परेशान हैं जबकि उनको इन परिस्थितियों को

बेहतर समझना चाहिए था। उनकी मंशा है कि आरबीआई को यूं नाम वापस लेने वालों पर जुर्माना लगाना चाहिए। मानो यह कोई स्कूली कक्षा हो जहां नाम कटाने वालों को सजा दी जाए। उनको अभी भी नहीं लगता है कि भुगतान बैंक के ढांचे में कोई गड़बड़ी है।

वास्तव में भुगतान बैंक के साथ समस्या क्या है? आरबीआई ने एक ऐसा कारोबारी मॉडल तैयार किया जिसके तहत भुगतान बैंकों से उम्मीद की जाती है कि वे वित्तीय समावेशन के नेक काम में मदद करें जबकि वे कारोबार करके पैसे न कमाएं। वे यह भी भूल गए कि जमा एकत्रित करना केवल आधा वित्तीय समावेशन है। बाकी आधा काम है उन लोगों को ऋण देना जिनकी पहुंच औपचारिक ऋण तक नहीं है। लेकिन भुगतान बैंक कर्ज नहीं दे सकते। वे 20 करोड़ प्रवासी श्रमिकों से भुगतान और नकदी स्थानांतरण के लिए शुल्क वसूल करके जरूर कुछ कमाई कर सकते हैं। बड़े, मुनाफे वाले मौजूदा वाणिज्यिक बैंक या तो इस काम को किफायती ढंग से अंजाम नहीं देते हैं या फिर इन सेवाओं के लिए अच्छी खासी वसूली करते हैं। लेकिन भुगतान बैंकों के लिए भी यह काम आसान नहीं होगा। मैं पहले भी इस बारे में संकेत कर चुका हूं।

ऐसा इसलिए क्योंकि रिजर्व बैंक में बैठे तकनीक विरोधी लोग दूरसंचार कंपनियों को अपने नेटवर्क का इस्तेमाल नहीं करने देंगे। आरबीआई का नियमन कहता है कि प्वाइंट ऑफ सेल टर्मिनल पर नकद निकासी की इजाजत दी जा सकती है। वह यह भी कहता है कि प्रवर्तकों की अन्य वित्तीय और गैर वित्तीय सेवा सेवा गतिविधियों को एक किस्म की घेरेबंदी में रखा जाना चाहिए। जाहिर है इस समय इस्तेमाल हो रहे अरबों मोबाइल फोन जिनमें से 90 फीसदी से अधिक प्रीपेड हैं उनका इस्तेमाल अभी नहीं किया जा सकता है।

ऐसे में मुंबई के किसी टैक्सी चालक का पैसा गोरखपुर में उसकी पत्नी तक कैसे पहुंचेगा? चूंकि किसी ने इसे स्पष्ट नहीं किया है इसलिए मैं मानकर चल रहा हूं कि यह शाखा नेटवर्क और मौजूदा बैंकों के एटीएम की वही पुरानी व्यवस्था होगी। या फिर यह नैशनल पेमेंट कॉर्पोरेशन की एकीकृत भुगतान व्यवस्था होगी जो धन के पुनप्रेषण के मार्जिन को किसी भी तरह कम कर देगी।

बैंकिंग सेवा और भुगतान व्यवस्था का पूरा कारोबार रचनात्मक विसंगति के लिए तैयार है। यह अंतत: उपभोक्ताओं की मदद करेगा। लेकिन इसकी राह में आरबीआई अड़ा हुआ है। भारत के एक हिस्से में खासतौर पर ई-कॉमर्स और निजी उद्यमों का क्षेत्र नवीनतम प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए तैयार है। इसकी बदौलत नागरिकों के जीवन में जबरदस्त सहजता और सुविधा आई है। वहीं एक अन्य हिस्से में नियामक कारोबारों को एक साथ जोड़कर उनका संचालन करने की कोशिश करते हैं। भुगतान बैंकों के साथ ऐसा ही हुआ। भुगतान बैंकों का संकट एक बार फिर हमें बताता है कि एक तेजतर्रार गवर्नर के अधीन भी आरबीआई में कोई खास बदलाव नहीं आया है।

Date: 03-06-16

सरकारी उपक्रमों को बढ़ावा जरूरी लेकिन राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं

कनिका दत्ता

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हाल ही में वॉल स्ट्रीट जर्नल को दिए साक्षात्कार में कहा कि सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और उसे किनारे करना ठीक नहीं है। उनकी बात सौ फीसदी सही है लेकिन शायद जिस इरादे से उन्होंने यह बात कही वह उचित नहीं। सरकारी क्षेत्र के बिना हम क्या करेंगे? रोजगार की बात करें तो वह मौजूदा सरकार के समक्ष अहम मुद्दों में से एक है। राजनीतिक हस्तक्षेप के चलते इस पर चाहे जितना बुरा असर पड़ रहा हो लेकिन इसके बावजूद देश का सरकारी उद्यम क्षेत्र इकलौता ऐसा क्षेत्र है जहां जरूरी सुरक्षा उपलब्ध है। एक औपचारिक सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के अभाव में यह गुण अनमोल है।

संगठित क्षेत्र के रोजगार की बात करें तो सरकारी क्षेत्र 1.8 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान करता है। जबकि निजी क्षेत्र में 1.1 करोड़ नौकरियां हैं। वहीं असंगठित क्षेत्र में 40 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार मिला हुआ है। कई सरकारी कंपनियों की हालत खस्ता है लेकिन उनका आकार भी अनुमान से बहुत ज्यादा है। अगर इन कंपनियों को बंद किया गया तो बेरोजगारी का स्तर हमारे अंदाज से कहीं अधिक बढ़ जाएगा।

उदाहरण के लिए बीएसएनएल जो 36,000 करोड़ रुपये के समेकित घाटे का शिकार है और जिसकी बाजार हिस्सेदारी लगातार घट रही है, वहां 2,00,000 से अधिक कर्मचारी काम करते हैं जबकि देश में निजी क्षेत्र की सबसे बड़ी दूरसंचार कंपनी भारती एयरटेल में केवल 24,868 कर्मचारी हैं। बीएसएनएल के निजीकरण की कोशिशें हुईं लेकिन श्रम संगठनों के तीव्र विरोध के चलते सरकार को अपने कदम वापस लेने पड़े।

कभी देश की इकलौती विमानन सेवा रही एयर इंडिया अब तीसरे नंबर पर है। इसका घाटा 7,500 करोड़ रुपये से ज्यादा का है। यह सैद्धांतिक रूप से अब भी चल रही है क्योंकि सरकारी कर्मचारी पूरे किराये

पर इसमें उड़ान भरते हैं। एयर इंडिया में 28,085 कर्मचारी हैं। गनीमत है कि सेवानिवृत्त कर्मचारियोंं की जगह नई भर्ती नहीं की जा रही। तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो बाजार हिस्सेदारी में देश की दूसरी सबसे बड़ी विमानन कंपनी जेट एयरवेज में 14,000 कर्मचारी ही हैं।

यह सच है कि एयर इंडिया, बीएसएनएल और ऐसी तमाम अन्य कंपनियों को राजनैतिक निर्णयोंं की कीमत भी चुकानी पड़ी। अगर ये कंपनियां निजी क्षेत्र में होतीं तो उनका बोरियाबिस्तर बंध गया होता। लेकिन देश के मौजूदा श्रम और दिवालिया कानूनों के चलते ऐसे कारोबार के निजी प्रवर्तक इन उद्यमों को समुचित तरीके से बंद भी नहीं कर पाते। ज्यादा संभावना इसी बात की है कि अपने कर्मचारियों के वेतनभत्ते न चुका पाने की स्थिति में देश छोड़कर चले जाते। सामाजिक सुरक्षा ढांचे के अभाव में आत्महत्या और बरबादी के किस्से सामने आते रहते। किंगफिशर एयरलाइंस का हालिया किस्सा और बंगाल के जूट श्रमिकों का दशकों पुराना मामला इसका उदाहरण है।लेकिन सरकार भाग नहीं सकती। इसलिए बीएसएनएल, एयर इंडिया और ऐसी अन्य कंपनियों के कर्मचारी भारतीय करदाताओं के पैसे पर आजीवन सुरक्षाबोध के साथ जिंदगी बिता रहे हैं। इनको न तो प्रदर्शन करने की चिंता है, न ही किसी और बात की। निजी क्षेत्र को भी सरकारी क्षेत्र से कई अप्रत्यक्ष लाभ हासिल हुए हैं। खासतौर पर सन 1991 में लाइसेंस राज के खात्मे के बाद। अगर ऐसा नहीं होता तो बड़े आकार के निजी कारोबारियों को राजनेताओं की ओर से मदद और फंड के नाम पर और अधिक परेशानी का सामना करना पड़ता। इसके अलावा कुछ क्षेत्रों में जहां सरकार का एकाधिकार समाप्त हो या वहां सरकारी क्षेत्र ने निजी क्षेत्र को शानदार कर्मचारी समूह और सक्षम प्रबंधन काडर भी मुहैया कराया। तेल एवं गैस क्षेत्र, बिजली कंपनियां, दूरसंचार कंपनियां, विमानन कंपनियां और वित्तीय सेवा समेत तमाम क्षेत्र इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार सरकारी क्षेत्र के श्रेष्ठ कर्मचारी कम होते गए लेकिन किसी ने इसकी शिकायत नहीं की।

एलआईसी और मारुति जैसे अपेक्षाकृत सफल उद्यमों से निजी क्षेत्र को देश के व्यापक उपभोक्ता आधार का भी फायदा हुआ। इस बीच विमानन, दूरसंचार, गैस एजेंसी और सरकारी बैंकों में पूर्व एकाधिकार ने सेवा गुणवत्ता के मोर्चे पर निजी क्षेत्र की मदद की। दूसरी ओर एक पहलू यह भी है कि प्रभावशाली कारोबारियों ने राजनेताओं पर दबाव बनाकर सरकारी बैंकों से अपनी अव्यावहारिक हो चुकी परियोजनाओं के लिए जबरदस्ती और अधिक ऋण मंजूर कराया। शायद निजी बैंक ऐसे जोखिम नहीं उठाते। सरकारी और निजी बैंकों के फंसे हुए कर्ज के आंकड़ों में यह अंतर साफ महसूस किया जा सकता है। सरकारी क्षेत्र के होने से ही निजी क्षेत्र के कारोबारियों ने ग्रामीण दूरसंचार, कम दूरी की हवाई उड़ान और गरीब उपभोक्ताओं के लिए विशेष लाभ जैसे सामाजिक दायित्वों का त्याग कर रखा है।करदाता यह शिकायत अवश्य कर सकते हैं आखिर उनके धन से गैर किफायती सरकारी उद्यमों को राहत क्यों दी जाए। हालांकि यह कोई दलील नहीं है लेकिन राजनीतिक नेतृत्व के सोच के चलते अमीर और मध्य वर्ग के लोगों तथा समृद्ध किसानों ने दशकों तक जनता के खर्चे पर सस्ती बिजली और सस्ते

ईंधन का लाभ लिया है। राजनीति की बात करें तो बिना सरकारी बैंकों, बीमा कंपनियों और ऐसी अन्य इकाइयों के सरकारें यूं बेतहाशा ऋण माफी नहीं कर पाएंगी और न ही चुनावी जीत सुनिश्चित करने के क्रम में मुफ्त बिजली दे पाएंगी। सरकार इन्हीं इकाइयों की मदद से उन आईपीओ को उबारती है जिनमें आम निवेशक रुचि नहीं दिखाते। अगर मोदी आमूलचूल सुधारों की परिभाषा को लेकर स्पष्टï नहीं हैं (जैसा कि उन्होंने वॉल स्ट्रीट को दिए साक्षात्कार में माना) तो उनको उस क्षेत्र में ही काम करना चाहिए जिसमें उन्हें लगता है कि सफलता मिल सकती है।

दैनिक जागरण

Date: 03-06-16

शिक्षा में सुधार की शुरुआत

प्रेमपाल शर्मा

सुब्रमण्यम समिति ने दौ सौ पन्नों की रिपोर्ट मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सौंप दी है। विश्वविद्यालयी शिक्षकों के लिए एक अखिल भारतीय शिक्षा सेवा का गठन सिविल सेवा परीक्षा की तर्ज पर

सुब्रमण्यम समिति ने अपनी लगभग दौ सौ पन्नों की रिपोर्ट मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सौंप दी है। इसको मोटा-मोटी 33 विषयों पर विचार करना था। समिति के अध्यक्ष थे पूर्व कैबिनेट सचिव टीएसआर सुब्रमण्यम जो प्रशासनिक दक्षता के साथ-साथ सामाजिक सक्रियता के लिए भी जाने जाते हैं। समिति ने कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं जिनमें एक सिफारिश अभूतपूर्व ही कही जाएगी। यह है विश्वविद्यालयी शिक्षकों के लिए एक अखिल भारतीय शिक्षा सेवा का गठन, जिससे नियुक्तियां संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सिविल सेवा परीक्षा की तर्ज

पर हों। विश्वविद्यालयी शिक्षा सुधार के लिए यह दूरगामी कदम होगा। शिक्षा समवर्ती सूची में हैसमवर्ती सूची में है, लेकिन विश्वविद्यालयों के निरंतर गिरते स्तर को रोकने के लिए यह तुरंत किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की भर्ती में राजनीति, भाई-भतीजावाद, जातिवाद और अन्य भ्रष्टाचार का ऐसा बोलबाला हुआ है कि पंसारी की दुकान की नौकरी और विश्वविद्यालय की नौकरी में अंतर नहीं बचा। रोज-रोज बदलती नेट परीक्षा, पीएचडी में उम्र के मापदंडों ने पूरी पीढ़ी का विश्वास खो दिया है। फल-फूल रहे हैं तो शिक्षक संगठन और उनके नेता। हालांकि उनके वेतनमान, पदोन्नति और अन्य सुविधाएं अखिल भारतीय केंद्रीय सेवाओं के समकक्ष हैं, लेकिन उनकी रुचि न पढ़ाने में है न शोध में। इसीलिए न शोध का स्तर बचा है न अकादमिक माहौल का। शायद यही कारण है कि प्रतिवर्ष अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया से लेकर पूरे यूरोप में पढ़ने के लिए भारतीय छात्रों की संख्या लगातार बढ़ रही है। इससे विदेशी मुद्रा का नुकसान हो रहा है। देश से प्रतिभा पलायन को रहा है। अपने संसाधन बेकार हो रहे हैं। बेरोजगारी बढ़ रही है।उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में दक्षिण भारत का शायद ही कोई छात्र मिले। केंद्रीय विश्वविद्यालयों में जरूर उम्मीद बची है, लेकिन पतन वहां भी तेजी से जारी है। अखिल भारतीय सेवा का गठन भर्ती की बुनियादी कमजोरी को दूर करेगा। कम से कम यूपीएससी जैसी संस्था की ईमानदारी और उसके प्रगतिशील रुख पर पूरे देश को गर्व है। उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार ऐसी ही भर्ती प्रणाली न्यायिक सेवा में भी लाएगी। यही कदम सिद्ध करेंगे कि यह सरकार पहले की सरकारों से भिन्न है? दूसरी महत्वपूर्ण मगर उतनी ही विवादास्पद सिफारिश आठवीं तक बच्चों को फेल न करने की नीति को उलटना और बदलना है। शिक्षा अधिकार अधिनियम में यह व्यवस्था की गई थी कि किसी भी बच्चे को आठवीं तक फेल नहीं किया जाएगा। उद्देश्य यह था कि इससे जो बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं उन्हें एक स्तर तक पढ़ाई के लिए स्कूल में रोका जा सके, मगर कार्यान्वयन की खामियों की वजह से स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आई है और अधिकांश राज्य इसके खिलाफ हैं। 18 राज्यों ने इसे हटाने का अनुरोध केंद्र सरकार से किया है जिसमें कर्नाटक, केरल, हरियाणा से लेकर दिल्ली भी शामिल हैं। चूंकि शिक्षा का अधिकार कानून केंद्र सरकार का बनाया हुआ है इसलिए वही इसमें राज्यों के सुझावों और अब सुब्रमण्यम समिति की सिफारिशों के मद्देनजर परिवर्तन कर सकती है। किसी भी तर्क से छात्रों को केवल स्कूल में रोकना ही शिक्षा का मकसद नहीं हो सकता। उन्हें जानकारी से लैस होने के साथ लिखना-पढ़ना भी आना चाहिए। अकेली इस नीति ने शिक्षा का नुकसान ज्यादा

किया है। हाल के परिणाम भी इसके गवाह हैं। दिल्ली के दो स्कूलों में कक्षा नौ में लगभग नब्बे प्रतिशत बच्चे फेल हो गए। कारण आठवीं तक कोई परीक्षा न होने की वजह से उन्होंने कुछ सीखने की जहमत ही नहीं उठाई। अधिकांश मामलों में तो वे स्कूल भी नहीं आते।सुब्रमण्यम समिति ने पांचवीं कक्षा के बाद परीक्षा की अनुशंसा की है और यह भी कि फेल होने वाले छात्र को तीन मौके दिए जाएं और स्कूल ऐसे कमजोर बच्चों को पढ़ाने के लिए अतिरिक्त व्यवस्था करे। इस समिति की कुछ और सिफारिशें पुरानी बातों की पुनरावृत्ति मानी जा सकती हैं। जैसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और एआईसीटीई का पुनर्गठन, जिससे ये संस्थाएं और प्रभावी बनाई जा सकें। देश में विदेशी विश्वविद्यालयों को अनुमति पुरानी सरकार भी देना चाह रही थी। तीन भाषा फॉर्मूले पर भी समिति उसी पुरानी नीति पर चलने के लिए कह रही है जो 1968 और 1986 की शिक्षा नीति में शामिल था।भाषा के मसले पर सुब्रमण्यम समिति से पूरे देश को उम्मीदें थीं। इसलिए और भी कि मोदी सरकार ने सिविल सेवा परीक्षा में भारतीय भाषाओं के पक्ष में निर्णय लिया था। 2011 में संप्रग सरकार ने मनमाने ढंग से सिविल सेवा परीक्षा के प्रथम चरण में अंग्रेजी लाद दी थी जिससे भारतीय भाषा के छात्रों की संख्या पंद्रह प्रतिशत से घटकर पांच प्रतिशत से भी कम हो गई थी। मोदी सरकार ने 2014 में इसे उलट दिया। एक और समिति संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं का जायजा ले रही है। उम्मीद है कि यह समिति दूसरी अखिल भारतीय सेवाओं जैसे वन सेवा, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि में भी भारतीय भाषाओं की शुरुआत करेगी, लेकिन सुब्रमण्यम समिति स्कूली और विश्वविद्यालयी स्तरों पर शिक्षा अपनी भाषाओं में देने की सिफारिश करती तो अच्छा रहता। सुब्रमण्यम उत्तर प्रदेश कैडर के अधिकारी रहे हैं, तमिल भाषी हैं और अपनी किताब टर्निंग प्वाइंट में अपने बचपन को याद करते हुए उन्होंने भारतीय भाषाओं में शिक्षा देने की तारीफ और वकालत की है। विद्वानों की इतनी बड़ी समिति से ऐसे राष्ट्रीय मुद्दे पर तो देश को उम्मीद रहती ही है। समिति की सिफारिशें मानव संसाधन मंत्रालय के पास हैं। उम्मीद है जन आकांक्षाओं को मूर्तरूप देने में मंत्रालय विलंब नहीं करेगा। न बार-बार ऐसी समितियां ऐसे क्रांतिकारी सुझाव देती हैं और न तुरंत कार्यान्वयन करने वाली सरकारें ही सत्ता में आती हैं।[लेखक प्रेमपाल शर्मा, रेलवे बोर्ड के पूर्व संयुक्त सचिव, जाने-माने कहानीकार एवं शिक्षा मामलों के विशेषज्ञ हैं|